ज्ञानोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक—२

सिद्धसेन दिवाकरकृत

सन्मति प्रकरण

गुजरातीमें
प्रस्तावना, अनुवाद और विवेचनके
लेखक

पण्डित सुखलालजी संघवी, डी. लिट्,
पण्डित बेचरदास जीवराज दोशी

अनुवादक

अध्यापक शान्तिलाल म. जैन
एम० ए०, शास्त्राचार्य

ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद

मुख्य वितरक
मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली · वाराणसी पटना

प्रकाशक
रतिलाल दीपचन्द देसाई
मन्त्री, ज्ञानोदय ट्रस्ट
अनेकान्त विहार (श्रेयस् कॉलोनीके पास)
अहमदाबाद—९
(गुजरात राज्य)

●

मुख्य वितरक
मोतीलाल बनारसीदास
नेपालीखपरा
वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

●

अन्य प्राप्तिस्थान
(१) गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय
गांधीमार्ग, अहमदाबाद १
(२) सरस्वती पुस्तक भंडार
हाथीखाना, रतनपोल
अहमदाबाद १

●

मई १९६२
वैशाख : वि० सं० २०१९

●

मूल्य : छ: रुपये

मुद्रक
नरेन्द्र भार्गव
भार्गव भूषण प्रेस,
घोसियाटोला, वाराणसी

प्रकाशकीय निवेदन

आचार्य सिद्धसेन दिवाकरके 'सन्मतितर्क प्रकरण' नामक प्राकृत ग्रन्थकी आचार्य अभयदेवकृत 'वादमहार्णव' नामक संस्कृत टीकाका विस्तृत तुलनात्मक टिप्पणोंके साथ सम्पादन पू० प० श्री सुखलालजी संघवी और पू० पं० श्री बेचरदास दोशीने किया था, जो गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-द्वारा पाँच भागोंमें प्रकाशित हुआ है।

इन्हीं पंडितद्वयने मिलकर उक्त सम्पादनके लिए गुजरातीमें विस्तृत प्रस्तावना लिखी थी, तथा मूल सन्मति प्रकरणका गुजरातीमें अनुवाद और विवेचन लिखा था, जो 'सन्मति प्रकरण'के नामसे स्वतन्त्र ग्रन्थ रूपमें गुजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित हुआ है।

इस गुजराती ग्रन्थकी अद्यावधि दो आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। गुजराती 'सन्मति प्रकरण' की दूसरी आवृत्तिके आधार पर इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद कराकर ज्ञानोदय-ग्रन्थमालाके द्वितीय पुष्पके रूपमें यह 'सन्मति प्रकरण' ग्रन्थ प्रकाशित करते हमें हर्ष होता है।

इस ग्रन्थके हिन्दी अनुवादके प्रकाशितके समय श्री प० सुखलालजीने विशेष परिश्रमपूर्वक प्रस्तावनामें उल्लेखनीय संशोधन किये हैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत हिन्दी संस्करणका महत्त्व और बढ़ गया है।

इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करनेकी अनुमति प्रदान करनेके लिए हम गुजरात विद्यापीठ-अहमदाबादके आभारी हैं।

इस ग्रंथको वाराणसीमें मुद्रित करनेका सारा प्रबन्ध हमारे मित्र पंडित श्री महेन्द्रकुमारजी जैनने किया है, और इस ग्रंथका

आकर्षक, स्वच्छ व सुन्दर मुद्रणकार्य भार्गव भूषण प्रेसने किया है, हम उन दोनोंके बहुत कृतज्ञ है।

आशा है, जैन दर्शन व तर्कशास्त्रके जिज्ञासुओं और अभ्यासियोंको यह प्रकाशन लाभकारक सिद्ध होगा।

अहमदाबाद
ता २४-४-१९६३

र० दी० देसाई
मंत्री
ज्ञानोदय ट्रस्ट

ज्ञानोदय ट्रस्ट और उसके स्थापक

(१)

ज्ञानोदय ट्रस्टका परिचय

१९५५ ईसवीके दिसम्बरकी ८वी तारीखको पूज्य पण्डित श्री सुखलालजीको ७५वाँ वर्ष पूरा होनेवाला था। पण्डितजीकी उत्कट विद्यासाधना, जागरूक जीवन-चर्या और वात्सल्यपूर्ण प्रकृतिके कारण सारे देशमे कई विद्वान्, श्रीमान्, सामाजिक एव राष्ट्रीय कार्यकर्ता तथा सामान्य भाई-बहन उनके प्रति श्रद्धा व आदरका भाव रखते हैं। अत उनके मित्रो, प्रशसको और शिष्योने सोचा कि इस शुभ अवसर पर सारे देशकी ओरसे उनका गौरव एव सम्मान करना चाहिए, और इसके लिए देशके विभिन्न प्रदेशोसे कम-से-कम ७५ हजार रुपयोकी निधि एकत्रित करके उन्हे समर्पित करनी चाहिए।

इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए १९५५के जून महीनेमे "पण्डित सुखलालजी सम्मान समिति"की स्थापना की गई। इस समितिके अध्यक्ष हमारी लोकसभा (Parliament) के तत्कालीन अध्यक्ष माननीय गणेश वासुदेव मावलकर थे, किन्तु उनका स्वर्गवास होने पर तत्कालीन बम्बई राज्यके मुख्य मत्री माननीय श्री मोरारजीभाई देसाई समितिके अध्यक्ष चुने गये। समितिका मुख्य कार्यालय अहमदाबादमे रखा गया और उसकी शाखाएँ बम्बई, कलकत्ता, बनारस, मद्रास, जयपुर, राजकोट आदि शहरोमे स्थापित की गई।

समितिने देशभरमेंसे रु० १,०१,१४१–७५ की निधि एकत्रित की और पण्डितजीके गुजराती एव हिन्दी लेखो तथा निबन्धोका सग्रह करके गुजरातीमें "दर्शन अने चिन्तन" नामक दो ग्रन्थ और हिन्दीमे "दर्शन और चिन्तन" नामक एक ग्रन्थ इस तरह कुल ढाई हजारसे भी अधिक पृष्ठोके तीन ग्रन्थ प्रकाशित किये।

१५ जून १९५७को सायकाल ५ बजे बम्बई यूनिवर्सिटीके कॉन्वोकेशन हॉल में भारतके तत्कालीन उपराष्ट्रपति तथा विश्वविश्रुत तत्त्वचिन्तक माननीय डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्की अध्यक्षतामें पण्डितजीके सम्मानका एक भव्य समारोह किया गया। समारोहमे डॉ० राधाकृष्णन्के करकमलोसे पण्डितजीको पचपन हजार रुपयोकी निधि और "दर्शन-चिन्तन"के तीन ग्रन्थ समर्पित किये गये।

समारोहके पश्चात् एकत्रित हुए पन्द्रह हजार रुपये भी उक्त निधिमें समर्पित करनेके लिए पण्डितजीको अर्पण किये गये।

इस प्रकार सत्तर हजार रुपये नगद और सम्मान समितिके दाताओंको उपहार-स्वरूप देनेके उपरान्त "दर्शन-चिन्तन"की अवशिष्ट प्रतियोंका मूल्य ग्यारह हजार रुपये गिनकर कुल इक्यासी हजार रुपयोंका एक ट्रस्ट पण्डितजीने २१ नवम्बर, १९५७के दिन स्थापित किया। इस ट्रस्टका नाम **'ज्ञानोदय ट्रस्ट'** रखा गया।

उद्देश्य

(१) विद्वानोंको योग्य पारिश्रमिक देकर भारतीय संस्कृति, दर्शन और धर्म विषयक ग्रंथ तैयार करवाना और उन्हें प्रकाशित करना।

(२) भारतीय संस्कृति, दर्शन और धर्मके विषयको लेकर आगे अध्ययन करनेवाले छात्रों एवं विद्वानोंको छात्रवृत्ति या प्रवासव्यय (Travelling Fellowship) देना।

(३) पण्डित सुखलालजीके ग्रन्थ, लेख और निबंधोंको एकत्रित करके उनका सम्पादन एवं प्रकाशन करना तथा भिन्न-भिन्न भाषाओंमें उनका अनुवाद करवाना।

(४) विद्वानोंको योग्य पारिश्रमिक देकर भारतीय संस्कृति, दर्शन और धर्मसे सम्बन्धित विषयों पर व्याख्यानोंकी आयोजना करना और उन्हें प्रकाशित करना।

(५) विश्वकी विभिन्न संस्कृतियोंका सांस्कृतिक समन्वय एवं मानवताके उत्थानमें सहायक होनेवाला मूल या अनूदित साहित्य प्रकाशित करना।

ट्रस्टीमण्डल

(१) पण्डित श्री सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद
(२) मुनि श्री जिनविजयजी, ,,
(३) श्री परमानन्दभाई कूँवरजी कापडिया, बम्बई
(४) श्री चिमनलाल चकूभाई शाह, ,,
(५) श्री प० दलसुखभाई मालवणिया, अहमदाबाद
(६) श्री भँवरमलजी सिंघी, कलकत्ता

[प्रारम्भमें दो सालसे अधिक समयके लिए श्री काकासाहेब कालेलकर भी ट्रस्टी रहे।]

ट्रस्टका पता अनेकान्तविहार (थेयम् कॉलोनीके पास), नवरंगपुरा, अहमदाबाद–९ (गुजरात राज्य)।

(२)

प्रज्ञाचक्षु श्री पण्डित सुखलालजीका परिचय

भारतीय दर्शनोके समर्थ पण्डित और दार्शनिक समन्वयके मौलिक चिन्तक पण्डित श्री सुखलालजीका जन्म ता० ८-१२-१८८० के दिन एक व्यापारी वणिक कुटुम्बमे हुआ था। सौराष्ट्रके झालावाड जिलेका छोटासा लीमली गाँव पण्डितजीका जन्मस्थान है। आपके पिताका नाम सघजीभाई था।

बचपनसे ही बुद्धिशाली पण्डितजी जैसे विद्याभ्यासमे सदैव आगे रहते थे, वैसे ही तैरने, घुडसवारी और घोडेकी पीठपर खडे रहकर सरकसके खिलाडीकी भाँति उसे दौड़ाने आदि साहसिक कार्योमे भी आगे रहते थे। इतनी विद्यानिष्ठा और साहसप्रियताके साथ-साथ स्वाश्रयप्रियता, आज्ञाकारिता तथा किसीका भी कार्य आनन्दपूर्वक करनेकी तत्परताका विरल सुयोग उनमे था। इसके कारण वे शिक्षकोमे, कुटुम्बीजनोमे एव गाँवमें सबके प्रियपात्र थे।

गुजरातीकी सात कक्षा तक पढाई करनेके बाद उनका मन अग्रेजीका अध्ययन करनेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित होने पर भी पिताजीने ऐसे बुद्धिशाली और गुणवान पुत्रको विद्याके बदले व्यापारमे जोडना योग्य समझा और पण्डितजी दुकान पर बैठने लगे।

परन्तु भाग्य-निर्माण कुछ और ही था। पण्डितजीकी माताका तो चार वर्षकी अवस्थामें ही स्वर्गवास हो चुका था। सगी माताके प्रेमको भी भुलानेवाली नयी माता आई और वह भी चौदह वर्षकी आयु तक पहुँचते-पहुँचते चल बसी। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें उनके विवाहकी तैयारियाँ चल रही थी, परन्तु कन्यापक्षमे कुछ घटना घटित हुई, जिससे विवाह स्थगित रखना पडा। सोलह वर्षकी आयुमे पण्डितजी चेचकके भयकर रोगसे ग्रस्त हुए। इस व्याधिमेंसे वे बडी कठिनाईसे बचे, पर उनकी आँखोका तेज सदाके लिए नष्ट हो गया और कुटुम्बकी सारी आशाएँ निराशामे परिणत हो गई। यह वर्ष था वि० स० १९५३ का।

पण्डितजीके अन्तरमे मानो अन्धकार छा गया, परन्तु धीरे-धीरे उनके मनकी विकलता दूर होने लगी। गाँवमे आनेवाले जैन साधु-साध्वी एव दूसरे सन्तोके पाससे जो कुछ जाना-समझा जा सकता था उसे प्राप्त करनेके लिए पण्डितजीने अपना मन उस ओर मोडा। जिसको विधाताने दगा दिया उसको शास्त्राभ्यासने

जीवनके अमर पाथेयका दान किया। 'न दैन्यं न पलायनं' यह पण्डितजीका साधना-मन्त्र बन गया।

लगभग सात वर्ष इस प्रकार बीत गये। अब पण्डितजीका मन उच्च विद्याध्ययनके लिए लालायित रहने लगा। अब उन्हें प्रतिपल ऐसा ही विचार आता कि जहाँ कही गम्भीर शास्त्राभ्यास हो सके वहाँ चाहे जितना कष्ट झेलकर भी पहुँचना चाहिए। कष्ट तो प्रगतिका प्रथम सोपान है। इसीलिए 'विपद सन्तु न शश्वत्'—व्यास का श्रीकृष्णके सामने कुंती द्वारा कहलाया गया यह वाक्य पण्डितजी को अत्यन्त प्रिय है।

इस बीच पण्डितजीको कहींसे ज्ञात हुआ कि काशीमे आचार्य श्री विजयधर्मसूरीश्वरजीने जैन विद्वानोको तैयार करनेके लिए 'श्री यशोविजयजी जैन संस्कृत पाठशाला'की स्थापना की है। यह जानकर उन्होने किसी भी तरह काशी पहुँचनेकी मनमें ठान ली और कुटुम्ब द्वारा हजार मना करनेपर भी एक दिन वे काशीके लिए प्रस्थित हुए। वे महारथी कर्णकी भाँति ऐसा ही मानते है कि जीवन-विकासके मार्गमे भाग्यने भले ही अवरोध खडे किये हों, परन्तु पुरुषार्थ द्वारा उन अवरोधोको पार करना अपने वसकी बात है। 'मदायत्तं तु पौरुषम्' पण्डितजीका जीवनमंत्र है।

काशीमे तीन वर्षमे पण्डितजीने अठारह हजार श्लोक-परिमाण सिद्धहेम-व्याकरण कण्ठस्थ कर लिया, साथ-ही-साथ न्याय एवं साहित्यका अभ्यास भी शुरू कर दिया। परन्तु बादमे उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि अधिक गहरे अभ्यासके लिए पाठशालाका वातावरण अनुकूल नहीं है, फलत वे गगाके किनारे भदैनी घाट पर एक जैन धर्मशालामे अपने ब्राह्मण मित्र व्रजलालजीके साथ रहने चले गये। यहाँ आर्थिक कठिनाइयाँ तो बहुत थी और अपनी उत्कट जिज्ञासाको सन्तुष्ट करनेवाले गुरुओका सुयोग भी सरल नही था। कडे जाडेमे या चिलचिलाती धूपमें रोज छ-आठ मील चलकर वे गुरुओके पास पहुँचते। एक बार तो अमेरिका जानेका भी मनोरथ किया था। ऐसे कठोर और गम्भीर विद्याध्ययनके समय भी गगाके गहरे और तेज प्रवाहमे स्नान करनेका उन्हे मन हो आता। हाथमें रस्सी बाँधकर और किनारेपर किसीको उसका एक छोर पकड़वाकर वे स्वय तैरनेका आनन्द लेते। एक बार तो तेज प्रवाहमे बह जानेसे उन्हे उनके मित्र व्रजलालजीने बडी कठिनाईसे बचाया था।

व्याकरण-साहित्यके अध्ययनके बाद लगभग तीन वर्षमे दर्शनशास्त्रका जो अभ्यास काशीमे शक्य था उसे पूर्ण करने पर पण्डितजीका मन नव्यन्यायके अध्ययनार्थ मिथिलामे जानेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठा। मिथिला है नव्य-न्यायके प्रकाण्ड पण्डितोका प्रदेश, किन्तु दूसरी ओर वहाँ दरिद्रता भी उतनी ही है।